अर्जुनोर्वशी

श्रीनाथ मेहरोत्रा 'श्रान्त'

तुलसी सदन प्रकाशन
फर्रुखाबाद

तुलसी सदन प्रकाशन
मित्तू कूंचा,
फर्रुखाबाद

प्रथम संस्करण
सं० २०१६ वि०
मूल्य रु० १.२५ न० पै०

मुद्रक
चन्द्रप्रकाश ऐर
लीडर प्रेस, इलाहा

भगवान् नीलग्रीव शंकर

के

पादारविन्दों पर

यह

प्रथम प्रयास पुष्प

सा

द

र

समर्पित





पूज्यपाद परमहंस रामदेव जी महाराज का

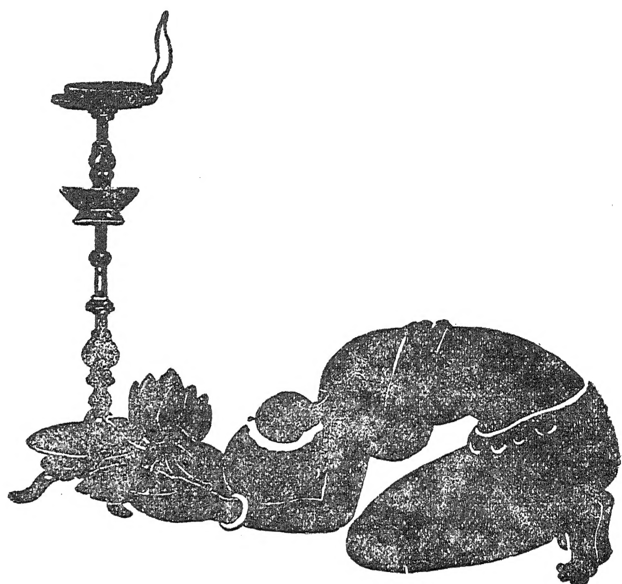
आशीर्वाद



इस अर्जुनोर्वशी काव्य को मैंने श्रीनाथ मेहरोत्रा 'श्रान्त' के द्वारा ही श्रवण किया। इसमें भावाभिव्यजन तथा रसाभिव्यजन सुन्दर रूप से किया गया है। आशा है कि इसके द्वारा हिन्दी प्रेमियो तथा काव्य-रसिको को विशेष लाभ होगा। इस रचना को तथा इसके कवि को मेरा निरन्तर आशीर्वाद है। मेरी आकाक्षा है कि यह ऐसी ही रचनाये और करते रहे।

—रामदेव

माघ शुक्ल ६
संवत् २०१५



भूमिका

काव्य की उत्पत्ति आनन्द से होती है, उसकी स्थिति आनन्द मे रहती है और उसकी परिसमाप्ति भी आनन्द मे ही होतीहै । काव्यानन्द, ब्रह्मानन्द से कम नहीहोत है, भले उसको ब्रह्मानन्द सहोदर कहा जाये। मै तो मानता हूँ कि काव्यानन्दा ही ब्रह्मानन्द है, क्योकि आनन्द की एक अखण्ड सत्ता होती है, जिसमे विभक्ति सभव नही है। ईश्वर का एक नाम कवि भी है और उसकी आनन्दमयी सत्ता की अभिव्यक्ति काव्य है। ईश्वर की वह आनन्दमयी अभिव्यक्ति चराचर मे व्याप्त है।

'स विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि'

—पुरुष सूक्त

इसी चराचर की रसमयी अभिव्यक्ति के साथ कवि को एकाकारता स्थापित करनी होती है । इस एकाकारता की प्राप्ति जिस कवि को जितनी प्रगाढ होती है, वह उतना ही सफल कवि होता है । माया से ग्रस्त जीव होता है और माया से मुक्त ईश्वर। यह आनन्दबोध निश्चय ही कवि को और सहृदय पाठक को अखण्ड आनन्द मे निमग्न कर देता है। कवि इसी अर्थ मे अपनी रचना के क्षणों

मे अलौकिक और दिव्य होता है। न्याया ने मुदित की अवस्था मे—योग दर्शन की भाषा मे 'बालैकवत्तु' की जैसी दशा मे अक्षर आनन्द एवं शब्द ब्रह्म स्वयं उसकी प्रज्ञा मे दौडे आते है। आनन्दानुभूति की अतिशयता ही अभिव्यक्ति मे अनायास परिगत हो जाती है, जैसे बीरुध का आनन्द सुमन मे झाँक कर किलक उठता है। परन्तु यह स्थिति बाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, सूर, कबीर, मीरा, तुलसी, प्रसाद और निराला के ही काव्य मे दृष्टिगत होती है, प्रयोगवादियो के काव्य मे नही।

अपनी ही परिभाषा के अनुसार मै युक्त कवि नही ठहरता हूँ। मै अपने को हिन्दी का मध्यम कोटि का कवि भी सिद्ध कर सकूँ, यह मेरे लिए अपार गौरव की बात होगी। 'अर्जुनोर्वशी' मेरी प्रथम प्रकाशित रचना होगी। आपके स्नेह-प्रोत्साहन की मेरे काव्य बाल महीरुह को अधिक आवश्यकता होगी, अनुचित आलोचना की लू कदाचित् यह न सँभाल सके।

उर्वशी जैसी अप्सराओ के रूप की मादकता ने अनेक साधको को भ्रष्ट किया है। वर्त्तमान राष्ट्रीय निर्माण की बेला मे हमे भोगो का परित्याग कर अर्जुन हो जाना होगा। देश के वृद्ध युधिष्ठिर तारुण्य के अर्जुन का पतन सहन न कर सकेंगे। युगो से चली आती हुई महाभारत की कहानी अभी पूरी नही हुई है। इस बार की महाभारत की समाप्ति युद्ध से नही होगी, प्रत्युत हृदय परिवर्त्तन से होगी। पूर्व और पश्चिम, उत्तर और दक्षिण की भेदात्मक सीमाओं को हटना होगा। केवल एक आकाश होगा—मानवता का। समग्र ससार के चेतनारूप अर्जुन के भक्ति-परायण हृदयाकाश मे जब वेदान्त का सूर्य 'एकम् ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' जगमगायेगा, तभी चिर हिसा घृणा द्वेष मद मात्सर्य अहंकार का तिमिर सदैव के लिए फटेगा। मै इस पहलू पर बहुत आशावादी हूँ, यथार्थवादी नही हूँ और निराशावादी तो बिलकुल नही हूँ। ज्ञान एकता की तात्विकता का निश्चय करायेगा और भक्ति

नम्रता को शाश्वत स्थापना कर राजसी एवं तामसी विकारो को उठने ही न देगी। मेरे इस काव्य मे भोग परित्यागमूलक अर्जुन के इसी रूप की स्थापना का प्रयास हुआ है। पाठक निर्णय करेंगे, मुझे इसमें कहाँ तक सफलता मिली है।

अन्त मे मैं समस्त सन्तो को, गुरुजनो को, विप्रो को सादर नमन करता हूँ, जिनके आशीर्वाद का मूर्त्त रूप मेरा यह प्रस्तुत काव्य है।

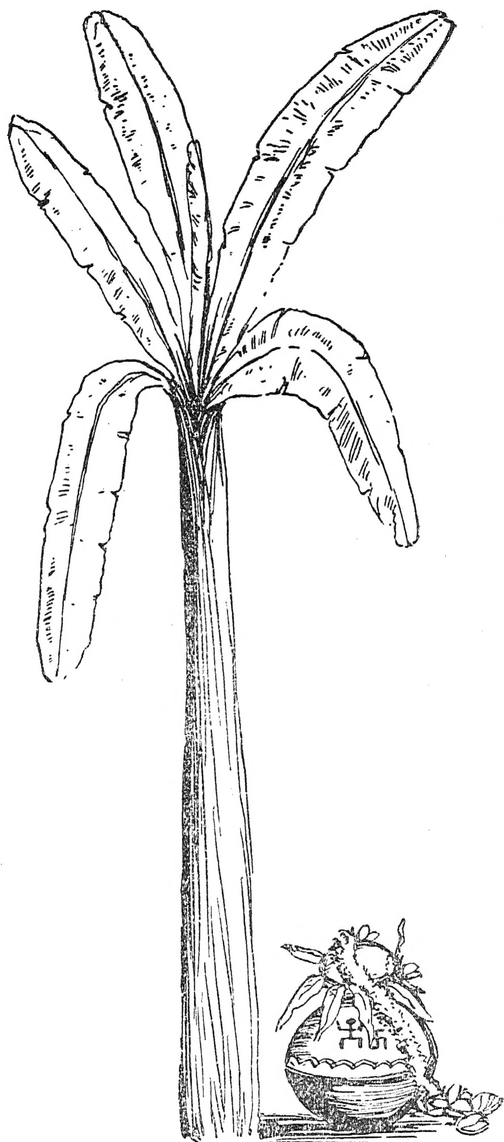
विशेषतः पूज्यपाद परमहंस रामदेव जी महाराज ने अपना आशीर्वाद प्रदान कर मुझे अत्यन्त आभारी किया है। मेरे पास शब्द नही है कि मै अपनी कृतज्ञता ज्ञापित कर सकूँ। मै वाणी रहित शिशु हूँ और स्वामी जी पुराण पुरुष। उनका आत्मीयता मे लिपटा आशीर्वाद देना सहज स्वभाव है जैसे सूर्य का आलोक देना अथवा गगा का पापमोचक अमृत प्रवाह देना। स्वामीजी देश के सर्वश्रेष्ठ तपस्वी सन्त है और उनका आशीर्वाद पाना मेरे लिए परमानन्द की वस्तु है।

पाठक वर्ग से मेरा सादर अनुरोध है कि इस 'अर्जुनोर्वशी' काव्य के पठनोपरान्त अपनी सम्मति मेरे पास लिखित रूप मे भेज कर अपने अपार सौजन्य से मुझे आभारी करे।

ॐ कैलासिने नमः

राजेन्द्र कालेज, छपरा
माघ शुक्ल ६, स० २०१५

विनीत
—श्रीनाथ मेहरोत्रा 'श्रान्त'





"गाता हूँ गीत मै तुम्हे ही सुनाने को।
भले और बुरे की,
लोक निन्दा यश कथा की
नही परवाह मुझे;
दास तुम दोनो का
सशक्तिक चरणो मे प्रणाम है तुम्हारे देव!
पीछे खडे रहते हो,
इसीलिए हास्य मुख
देखता हूँ बार बार मुडकर।
बार बार गाता मै
भय नही खाता कभी,
जन्म और मृत्यु मेरे पैरो पर लोटते है।"

—महाकवि निराला

●●●

भो भो फाल्गुन तुष्टोऽस्मि कर्मणाऽप्रतिमेन ते ,
शौर्येणानेन धृत्या च क्षत्रियो नास्ति ते समः ।

—भगवान् शंकर

●

अरसिकेषु कवित्व निवेदनम्
शिरसि, मा लिख, मा लिख, मा लिख ।

●

There is a pleasure in Poetic pains, which only-poets know.

—W. *Wordsworth*

●

अर्जुनोर्वशी

जगदम्बा वन्दना

प्रसीदाम्बिके ॐ स्वरूपे सुनयने,
हसतु मुण्डमाले कृपामेघधारे,
प्रदेह्यंकशरणम् शिशुः विस्मृतः किम्,
प्रगाढम् धरतु तापततम् कुबालम्।

पयोदाञ्चले देवि दुर्गे विशाले,
अनलजिह्वके कोटिशशिशीतलाभे,
दयासिंधुरूपे जननि प्रीतिभावे,
कराग्रम् धरतु पापमग्ने जने हे!

प्रलयसृष्टिनेत्रे सरलहासशोभे,
असितपुष्पकेशे धवलद्युतिनखाग्रे,
सदानन्दनन्दे हृदयकुमुदचन्द्रे,
बसुत हृदयभागे शिवे कालिके हे!

महाशक्तिज्वाले अरुणपादजलजे,
लसद्दिव्यशोभे सुधाधारगङ्गे
अहंलीनमाये महेशादिपूज्ये,
त्रिशूले धरतु मां निजाङ्के निरीहे।

निराकारसाकाररूपे अतीते,
अमरसेविते शान्तशीतलसुहासे,
स्पृशतु मम शरीरम् भवेम् तव दासः,
तवाङ्के तवाङ्के हि क्रीडेम् सततम्।

स्रवत्रुधिरमस्तकसुशोभितसुहस्ते,
रुधिरखर्परे, मदद्गान्ते, सुमुकुटे,
शिवशरीरधृतपदललामे, प्रमत्ते,
चलज्जिह्वदीप्ते, प्रणामः प्रणामः।

स्वयंभवसमुल्लासजनित प्रमोदे,
जननि, शुद्धगति तत्त्वविलसद् प्रकाशे,
सतत सच्चिदानन्दसारे, सुवासे,
सतोगुण निपरणे, निजाङ्के धरतु मा।

परमहंसलीले, मृदुलशिशुविलासे,
लसल्लास्यलसिते, रमणरासरसिते,
प्रचण्डानने, घोर ताण्डवविधायिनि,
सुहासिनि, अभयदे निजाङ्के धरतु मा।





श्री गणेशाय नमः

प्रथम रश्मि

उर्वशी स्वर्ग शोभन,
सित कुड्म विकच यौवन,
उसके मृदु अंग अंग,
ऊषा ने भरे रंग।

शिर पर मृदु केश जाल,
शशि पर ज्यो व्याल माल,
नयनों के कौतूहल,
गिरि निर्भर से फेनिल।

उसके नव मृदु कपोल,
यौवन के प्रणय लोल,
नासिका रूप जय थी,
यद्यपि विस्मृत वय थी।

अधरों का आर्द्र हास,
संध्या का रश्मि रास,
दन्त पंक्ति शरद चन्द्र,
गति में थी मलय मन्द्र।

उन्नत उसके उरोज,
जैसे हों सित सरोज,
शैशव था यौवन में,
यौवन था बचपन मे।

जंघा पर नील वसन,
फूटी लावण्य किरण,
जैसे हो तुहिन गहन,
नाच उठे प्रात अरुण।

नूपुर के मराल स्वर,
नख मौक्तिक लोभी थे,
कोमल कोमल पदतल,
शतदल के शोभी थे।

सर में निज रूप देख,
आप में लजाती थी,
मनसिज की मदिरा पी,
झूम झूम गाती थी।

सुधि में भी बेसुध थी,
वह हलचल थी मद थी,
कौशेय कादम्बिनी,
पहन उतरी दामिनी।

अंगूरी हाला थी,
मणियों की माला थी,
दीप रूप ज्वाला थी,
सुधा सरित् बाला थी।

अंगों में थिरकन थी,
कुङ्कुम सुरभि विछलन थी,
मूर्च्छा थी मचलन थी,
स्वेद भरी कम्पन थी।

श्वासोच्छ्वास लास्य,
शरद पवन जलज हास्य,
नृत्य मुखर प्रकृति श्वास,
वह थी अतृप्ति प्यास।

चातकी की हूक थी,
वह पिकी की कूक थी,
पूर्णिमा की यामिनी,
कामिनी या दामिनी।

फेन पुष्प बेला सी,
सुर गङ्गा हेला सी,
कस्तूरी केशर सी,
ऊर्मिल सप्तस्वर सी।

वह सिन्धु इन्दिरा सी,
सोम पूत मदिरा सी,
कंकरण किंकिरिए क्वरण क्वरण,
कुञ्चन गत हरिरए श्रवरण,

शिशिर गात शरद हृदय,
बसन्त भूषा नव वय,
रोम रोम कली गली,
केशर में घुली मिली।

तारक कौशेय पहन,
थिरके ज्यो चन्द्र गगन,
शीत अमृत रिमझिम सी,
सद्य मिलन सरगम सी।

था कैसा स्नात गात,
तुहिनिल जलजात प्रात,
श्वास सुरभि मलय वात,
दोलित नव अंग पात।

स्वर्ण अलक मदिर पलक,
पियें मेघ इरा चषक,
वह तो थी दुग्ध ज्वार.
सिन्धु पात्र सृत उभार।

ऊष्मिल ज्यो ऊष्म प्यार,
पराग सित स्वेद धार,
मधु की पिचकारी सी,
अलसित कुच भारी सी।

सन्ध्या ऊषा लाली,
थिरके धरती डाली,
बाँट बाँट सोम घूँट,
चिर भरी भरी प्याली।

गेहूँ की बाली सी,
सरसो की जाली सी,
गन्ध नृत्य ताली सी,
नर्तित शेफाली सी।

रक्तिम बन्धूक अधर,
बैठे सित दन्त हंस,
लोल नवल धवल पंख,
कर्ण कौमुद अवतंस।

चंचल मृणालिनी सी,
उत्सुक मरालिनी सी,
ज्योति दीप्ति जाग्रति सी,
हिरण्यमयी मूर्त्ति सी।

हीरक माणिक्य मिलित,
शोभा की वर्षा सी,
रमण द्वीप वीथी सी,
मार पीर सरसा सी।



द्वितीय रश्मि

जब दिव्यास्त्र प्राप्त करने को अर्जुन,
धर्मराज से प्रेषित हुए घोर वन।
द्रौपदी ने किया वियोग भृश क्रन्दन,
जैसे निशि चकई का चकवा से बिछुड़न।

अर्जुन पद वन वीथी मे बढ़ते थे,
प्रिया दृगो से अश्रु सिन्धु कढ़ते थे।
मूर्च्छित हुई द्रौपदी छिन्न लतिका सी,
डगमग नीर चक्र घूर्मित नौका सी।

याद आया पार्थ को प्रिया मुख म्लान,
दुर्मद कौरवकृत द्रौपदी अपमान।
प्रभंजनाधिक वेगी हुआ अभियान,
गिरि झुकते होता जिधर तीव्र प्रयाण।

तब दीप्ति मे सूर्य हुआ हतप्रभ था,
अर्जुन के मन पर मुग्ध हुआ नभ था।
शालस्कन्ध पार्थ गति अरुण, गरुड थी,
अथवा दिनमणि की सी ऊष्म किरण थी।

गति यों थी नहीं कहीं कुछ दुर्गम था,
सत्य की विजय सा सभी कुछ सुगम था।
अर्जुन की गति गङ्गा का प्रवाह था,
अथवा बसंत का चल गन्धवाह था।

पार किये गिरि हिमवन्त, गन्धमादन,
औ दिवारात्र कहीं नहीं किया शयन।
अर्जुन की गति दुर्गा थी, चण्डी थी,
रय मे हिमाद्रि वात तीव्र ठण्डी थी।

आये किरात वेशी पथ पर शंकर,
मारा मृग वर, लगा वही अर्जुन का शर।
पशु पर पार्थ और शिव मे वाद बढ़ा।
दोनो के धनु से घन शरजाल कढ़ा।

किन्तु शंभु जीते, पार्थ हुए विस्मित,
मेरु अद्रि शिव, गाण्डीव हुआ निन्दित।
जब क्षीण वाण अर्जुन तूणीर हुआ,
धीर वीर पार्थ आहत अधीर हुआ।

फिर अर्जुन ने धनु कोटि से रण किया,
उसका भी हर ने हँस कर हरण किया।
हर उर धर्षण से पार्थ अचेत हुए,
मूर्च्छित अवयव रक्त शून्य श्वेत हुए।

मूर्च्छानन्तर पुनरुत्थित दुःखित तन,
हर के चरणो पर लिपट गये अर्जुन।
हर गम्भीर मन्द्र वाणी मे बोले,
वत्स उठो, नीर मे अंग निज धो ले।

तुझ सा धीर वीर क्षत्रिय नही कही,
तुझ सा धनुर्धर देव नर नही कही।
देता तुझे अस्त्र अमोघ प्रसन्न मै,
मानता तुझे विक्रम मे निपुण मै।

अर्जुन उठो, पाशुपतास्त्र ग्रहण करो,
अन्तक दाढ़ो का रण मे हरण करो।
फाल्गुन को शिव ने सिखलाया प्रयोग,
अन्तर्ध्यान शिव हुए, हर पूर्णयोग।

गदगद अर्जुन हर्ष अश्रु पुलकित थे,
स्पृष्ट हृष्ट शंभु हुए, उर प्रमुदित थे।
सुधन्य अनुगृहीत हूँ, उसने माना,
देवो को दुर्लभ शंभु दरस पाना।

दिव्यास्त्र लोकपालो ने पार्थ को दिये,
यथोचित प्रीति पूजन पार्थ ने किये।
कहा सुत सुनो देव कार्य करना है,
दुर्मद कौरव गण का मद हरना है।

सुरेन्द्र ने भेजा मातलि को रथ ले,
आओ आदर से प्रिय अर्जुन को ले।
स्यन्दन देदीप्त दिव्य मणियों से था,
चिर भास्वर माणिक्य मुक्ति लडियों से था।

स्वर्ग लोक पहुँचा अर्जुन का रथ शुभ,
देवों ने वन्दन किया औ झुका नभ।
ऐरावत निज शुण्ड मे सुमन भर कर,
शोभित हुआ पार्थ के शिर पर धर कर।

हर ओर गीत मुखरित हर ओर वाद्य,
छम छम छम होता था हर ओर नृत्य।
मलयानिल की श्वासों में नूपुर स्वन,
हर लेते थे बरबस मुनियो के मन।

दिव्य रथों पर बैठे थे सुर दम्पति,
दिव् प्रत्येक अप्सरा थी मानो रति।
सूर्य प्रात सी दिवस दीप्ति दिपती थी,
द्युति पूर्ण चन्द्र रातो में हँसती थी।

कि मधुपों में थी मचलन की गुंजार,
कि कलियो में थी पागल सी मनुहार।
प्रेयसि के सन्देश विहग लाते थे,
किसलय पर प्रणय पत्र उड़ आते थे।

स्वर्गलोक में सिद्ध कामना सुख था,
इच्छा फलती वैसी जैसा मख था।
प्रासाद वहाँ मणियों से निर्मित थे,
पुण्य बने थे दीप दीप्त दीपित थे।

नन्दन वन की शोभा आकर्षण थी,
फूट रही सुषमा की नयी किरण थी।
देखो वह कल्प वृक्ष, वह काम धेनु,
सुनो सुनो रुक खग कूजित विटप वेणु।

फिर अर्जुन ने देखे देवाधिराज,
खाते थे मुकुट रत्न पर शुक्र लाज।
पार्थ नमे, इन्द्र ने किया आलिंगन,
बैठाला उस पर निज था जो आसन।

तब अर्जुन ने पाये दिव्यास्त्र सकल,
उनके प्रयोग मोचन उनके छल बल।
अर्जुन देवराज के आभारी थे,
यद्यपि सुरगण गौरव से भारी थे।

इन्द्र सदन में जा देखा अम्ब शची,
नमन किया, आशिष पाई प्रीति रची।
सुत का सूँघा भाल पीठ सहलाई।
अपने हाथों उसने खीर खिलाई।

स्वर्गङ्गा तट पर कुञ्ज सघन वन,
वहाँ पार्थ का था दीपित पुण्य सदन।
पार्थ स्वर्ग तप कर सदेह आये थे,
भोगो से बच तप मे ही ताये थे।

तप महिमा से स्वर्ग सहज होता है,
तप आगे ब्रह्म लोक रज होता है।
तप शंकर, तप विधि, तप रुद्रो का गण,
समझो तप सत्य रूप है नारायण।



तृतीय रश्मि

अर्जुन का गौरव तन,
अपर कृष्ण, अपर तपन,
स्थित प्रज्ञ, तप निषरण,
हिमाद्रि सा जिनका मन।

घोर रुद्र तपो लीन,
क्षीण गात तेज पीन,
सिकता पर बैठे थे,
अन्तर में पैठे थे।

एक सत्य नारायण,
पाद व्याप्त निखिल गगन,
सब चर जड नारायण,
यह था निश्चित चिन्तन।

अर्जुन तप शंकर सा,
गात हुआ प्रस्तर सा,
अन्तर का कलुष हटा,
अन्तर का पंक मिटा।

अर्जुन सतोमूर्त्त थे,
वैराग्य अवधूत थे,
मार मार शंकर थे,
कान्हा के किंकर थे।

उनका दृढ़ मेरु वेश,
जैसे सौमित्र शेष,
ऊर्ध्व ध्यान ऊर्ध्व प्राण,
ऊर्ध्व रेत ऊर्ध्व ज्ञान।

खग करते थे अर्चन,
मृग करते पद वन्दन,
सूर्य तेज, चन्द्र हृदय,
हो अर्जुन की जय जय।

अद्वितीय ज्ञानी थे,
अद्वितीय ध्यानी थे,
मूर्त्त रूप संयम थे,
अग्नि नीर सम, शम थे।

नूतन सिह युवा थे,
घृत युत तप्त स्रुवा थे,
गाण्डीव कन्ध पर था,
त्रोण भुज बन्ध पर था।

भाल देदीप्त रवि था,
अंग अंग दृढ़ पवि था,
पद पर आकाश स्वयं,
आ आ कर झुकता था।

गङ्गा का नीर चक्र,
सम्मुख ही रुकता था,
सौरभ का तीव्र वात,
वीरुध को ठगता था।

चपल से मयूर बाल,
छूते जब अरुण गाल,
अर्जुन निज अंक बिठा,
धरते निज बाहु सटा।

हरिण शशक करते थे,
जब पद का लेलीहन,
पाते अगाढ़ वे थे,
अर्जुन के शत चुम्बन।

आई तभी उर्वशी,
जैसी हो कुमुद हँसी,
अर्जुन को देखा जब,
उर में प्रिय मूर्त्ति बसी।

प्राण प्राण, प्रीति पगी,
अंग अंग अग्नि जगी,
जीवन वह हार गई,
प्राणो को वार गई॥

रोम रोम कंट हुए,
स्वेद आर्द्र गात हुए,
स्तम्भित कम्पित उसके,
चपल श्वास वात हुए,

बढ़ी भीरु रुकी किन्तु,
नूपुर कुछ बोल उठे,
प्राणो के मिलन गीत,
साँसो पर डोल उठे॥

अर्जुन का ध्यान हटा,
देखी उर्वशी खडी,
स्वर्ग छोड़ देवि कौन,
पूँछा निभृत मे खड़ी।

वासना शिखा सी वह,
ऋत, तप से बोली यों,
अर्जुन मै दासी हूँ,
तव चरण उपासी हूँ।

करो प्रिय मेरा वरण,
मेरे तप्त अधर है,
मै हूँ सरित् और तव
तनु विशाल सागर है।

तुमसे तुमसा सुत मै,
पा लूँ कृतार्थ होऊँ,
तेरे परिरंभण मे,
विस्मृत निज को खोऊँ।

अर्जुन ने कहा, "अंब,
क्षमा करो माँ मेरी,
मम तप को आशिष दो,
जननि, मै शरण तेरी।

मैं नही विश्वामित्र,
रूप से हारे विकल,
मैं तो हूँ कृष्णशरण,
लखूँ कैसा कामबल।

इन्द्र पिता मेरे है,
माता सी पूज्या तुम,
वन्दनीय जितनी हो,
उतनी ही वर्ज्या तुम।

रूप परम सत्य शुभ्र,
पूजा की वस्तु नित्य,
वासना के पंक से मैं,
मलिन करूँ नहीं सत्य।"



चतुर्थ रश्मि

सूर्य सोम पावक मे,
सुमनो मे, लहरो म,
विद्युत् मे, उडुपो मे,
किन्नर के नगरो मे।

जल मे, थल मे, नभ मे,
वधू दिशा कुंकुम मे,
शशको मे, विहगो मे,
इन्दु शिखा बंकिम मे।

सोने में, चाँदी मे,
खेतो की माटी मे,
हीरो मे, पन्नो मे,
अरहर की साँटी मे।

सिकता के ढेरो मे,
शूलो में, मूलो मे,
गङ्गा के कूलों मे,
तारों के फूलो मे।

शिशुओ की मचलन मे,
नारी के यौवन मे,
बसन्त की गमकन मे,
कोकिल की कूजन मे।

गौओं की टोली मे,
ऊषा की रोली में,
लहरो की बोली में,
सन्ध्या की होली मे।

निदाघ की ऊष्मा मे,
वर्षा की विछलन में,
शरद शशि कौमुदी में,
कुमुदो के विलसन मे।

फिर शिशिर के शीत में,
हेमन्ती तुषार मे,
बयार की सितार में,
फगुआ के उभार मे।

पत्तों के मर्मर मे,
चाँदी के निर्झर मे,
बुलबुल की बोली मे,
गाँवों की चोली मे।

रूप की दिवाली में,
महुआ की लाली में,
केशर की डाली मे,
पराग की प्याली मे।

जहाँ जहाँ विभूति है,
प्रभा कान्ति दीप्ति है,
निश्चित है निश्चित है,
नारायिणी मूर्त्ति है।

असंभव असंभव यह,
प्रत्यूष मे तम ठहरे,
रामानुरक्ति मे कब,
वामानुरक्ति ठहरे।

मरुतो मे मरीचि औ,
नक्षत्रो मे चन्द्रमा,
रुद्रो मे शिव शंकर,
पितृ पूज्य अर्यमा।

वेदो मे सामवेद,
देवो मे देवराज,
मेघो का घनाटोप,
विद्युत का अखिल साज।

इन्द्रियगण मे मन औ,
भूतो की सुचेतना,
वसुओं मे अग्निपुंज,
रव मे सिह गर्जना।

गिरि कुल मे मेरु अद्रि,
अचरो मे हिमालय,
पादपो मे अश्वत्थ,
नीरो मे वरुणालय।

सुपर्ण की नभ उडान,
युद्धवीर ऐरावत,
अम्बर की महिमा सब,
शेष नाग फण विस्तृत।

भृगु नारद कपिल सिद्ध,
कार्त्तिकेय सेनानी,
बृहस्पति धनद कुबेर,
हनुमान् भरत ज्ञानी।

कीर्ति क्षमा स्मृति धृति श्री,
रूप दीप्ति झरे जहाँ,
सामवेद वाणी हो,
प्रणव नाद भरे जहाँ।

सूर्यों मे विष्णु तेज,
अंशुमान प्रखर तपन,
भूत आदि अन्त मध्य,
सब कुछ है नारायण।

जानो देवि उर्वशी,
नारायण महिमा सब,
लगता रूप तुम्हारा,
हरि की ही गरिमा सब।

नेत्रों के कटाक्ष शर,
तव रूप की झनकार,
जान गया जान गया,
हरि का ही छल प्रकार।

रूप मोहिनी धर कर,
शंभु को छला था तब,
कृष्णा परीक्षा मत लो,
मै तो हूँ तुच्छ लव।

कैसे ठहरूँगा मैं,
रूप ज्वार प्रवाह में,
हरि ही कन्दर्प बने,
बचे कौन प्रदाह मे।

रूप मार जीत सकूँ,
माँ माँ वर दो वर दो,
निज सुत की रक्षा हित,
मम शिर पर कर धर दो।



पञ्चम रश्मि

उर्वशी खडी सुनती सब थी,
उर मे मन्मथ पीडा थी,
जीते थे देव मनुज अब तक,
आज पराजय व्रीडा थी।

हिमालय सा अर्जुन कैसे,
मै विद्युत् बन बरस पड़ूँ
इसकी कूल भुजाओ मे मै,
जलधारा सी उमड बढ़ूँ।

अतृप्त अधरो का शीत करूँ,
कैसे मै निज को सँभालूँ,
आषाढ़ मेघ पी धरती सी,
कैसे मै हँस लूँ गा लूँ।

कैसे मै अधरो की स्मिति को,
इसके कपोल पर खीचू,
अर्जुन प्रस्तर उर जकडन में,
कैसे मै निज को सीचूँ।

विशाल शाल से धनंजय है,
मै कैसे लता सी फँसूँ,
हिमाद्रि तुङ्ग शृंग पर कैसे,
मै गङ्गा धार सी धसूँ।

सीमा मै भूमा को पाऊँ,
कैसे व्योम समेटूँ मै,
घन माला बनकर कैसे मै,
हा, अम्बर को भेंटूँ मै।

सागर की लहरो सी कैसे,
मै पूनम शशि तक जाऊँ,
मम अंग अग बने पवन,
अर्जुन कुंजो मे छाऊँ।

कैसे मै निज तृषा मिटाऊँ,
चिर हृदय तृप्ति पाऊँ मै,
कैसे मै तन्वी कुल्या सी,
इस अद्रि को रिझाऊँ मै।

कैसे मै लाऊँ अमृत फूल,
कैसे शिव शशि पाऊँ मै,
मै तो गह्वर मे डूब रही,
कैसे सम पर आऊँ मै।

कैसे मै पडी रहूँ नीरव,
चल धनंजय की बाँह मे,
काम मरु ताप मै ज्वलिता सी,
सो सकूँ चन्दन छाँह मे।

नीरव नयनो से अश्रु भरे,
वह निज उर मे अग्नि धरे,
कब से सोच रही खडी खडी,
अर्जुन मुझ पर दया करे।

समेट ले निज पृथुल अंक मे,
मुझ सी दीन अकिंचन को,
माटी हूँ, सुर भले कहे,
मणि कञ्चन मेरे तन को।

अर्जुन से रो रो बोली यो,
प्राणनाथ, दयित प्राणप्रिय,
प्रिय, रूप अपमान उचित नही,
बनो नही ऐसे निर्दय।

सतृष्ण इन्द्र पदो मे मेरे,
झुक महातर लगाता है,
चिर युव देवो का बृन्दारक,
नित शलभ बना आता है।

दिनकर मेरे लिए प्रति सायं,
सिन्धु प्रतीची मे ढलता;
और यह चन्द्र बारहोमास,
क्षीण क्षीण होकर गलता।

मेरे अधरो का स्वाद पुरुरवा,
मद गन्ध बना गाता है,
गोरी चम्पा मे जूही में,
मम दीप्त रूप माता है।

मेरे मृदु अंगो का सुवास,
ले मलयानिल आता है,
शशधर में मुझे जान अंबुधि,
लहराता उफनाता है।

मम गति पर हंसी बालायें,
लज्जा से छुप जाती है,
श्रवणावलम्बि लोचन पुट पर,
मृग वधुये शरमाती है।

मेरी कदली जंघा देखो,
रक्तिम अधर कली देखो,
मेरी मृणाल सी बाँहो मे,
शुभ्र शरद बदली देखो।

दोलित कुच युग उन्नति पर ,
स्वर्ग लोक की नति देखो ,
मेरे अंग अंग पर अवनत ,
लज्जित कोटिक रति देखो ।

अंग अंग में मेरे देखो ,
पाटल की छाई लाली ,
हूँ नन्दन वन की लतिका मै ,
विस्मित चकित स्वयं माली ।

अर्जुन ! मै तुमपर मोहित हूँ ,
तेरे पौरुष पर विस्मित ,
लगते सूर्य चन्द्र इन्द्र मुझे ,
सब तेरे आगे निन्दित ।

गङ्गा जल की शपथ मुझे ,
मैं तेरी चिर दासी हूं ,
तेरे उदग्र यौवन की मै ,
मानो युग से प्यासी हूं ।

अब तक मै युग-युग से याचित थी ,
मम प्रथम याचना तुम हो ,
मुझ पर पुष्प चढ़े अब तक थे ,
मम प्रथम अर्चना तुम हो ।

तेरे चरणों को धोकर मैं,
चरणोदक पान करूँगी,
शशि सा तुमको प्रतिक्षण लखकर,
चकोर सा प्राण धरूँगी।



षष्ठ रश्मि

पार्थ बोले मन्द्र स्वर मे,
देवि इतना मत डिगाओ।
वासना की सर्पिणी तुम,
दूर जाओ, दूर जाओ।

घृणा का ही वास उर मे,
प्रेम कहा उसमे समाओ।
द्वन्द्व की सेना करो जा,
जाल मत अपना बिछाओ।

वंश मेरा है भरत का,
पाण्डु की सन्तान हूं मैं।
ज्योति उर मे हैं जगाये,
सत्य मे अम्लान हूं मै।

रूप ज्वाला में जलूँ मै,
अन्ध सा मै कब शलभ हूँ।
सीख लें सुर कर्म मुझ से,
भोग त्यागी नर वृषभ हूँ।

कर चुकी तुम पति अनेको,
लाज क्या पाती नही हो।
स्वर्ग वैभव तुम भले हो,
धर्म पथ आती नही हो।

गोत्र मे मेरे सुनो! तुम,
लोष्ठ पर धन है कहाता।
वंश शिशु भी जानते है,
अन्य की स्त्री पूज्य माता।

भोग का अविचार पशुता,
धर्म सम्मत काम नरता।
कीट पशु की योनि पाऊँ,
कौन जड़ पथ पाँव धरता।

गात माटी में मिलेगा,
कीर्ति का रथ साथ होगा।
रूप ज्वाला से बचा यदि,
कृष्ण का शुभ हाथ होगा।

वासना का विष चखूँ मै,
यह कभी संभव नही है।
हंस मौक्तिक छोड खाये,
पंक यह संभव नही है।

अप्सरा हित तप नही मम,
ध्येय शंभु प्रसाद है बस।
विष्णु पद को छोड बोलो,
तव वरण मे कौन सा यश।

अप्सराओ ने डिगाये,
योगियों के शृंग कितने।
जानता मैं हरि शरण हूँ,
रूप मे है रंग कितने।

रूप फल है तेज का ही,
तेज हरि का बाह्य मण्डल।
भोग लिप्सा आसुरी है,
सत्य केवल मुनि कमंडल।

रोष मुझमे बढ़ न जाये,
इसलिए तुम लौट जाओ।
वासना की गन्ध को तुम,
स्वर्ग जाकर ही बहाओ।

नागिनी सी फरण फटक कर,
डाकिनी सी रद मसल कर।
अग्नि ज्वाला सी लहक कर,
पद पटक, किसलय कुचल कर।

फडकने नासा लगी थी,
हाथ मलने वह लगी थी।
काँपती आवेश मे थी।
स्वेद युत होने लगी थी।

क्रोध की बरसात थी वह.
रोप की चण्डी बनी थी।
काम ही तो क्रोध भी है,
अब सुरा, ज्वाला घनी थी।

दामिनी की कडक थी वह
मूर्त्त हिंसा भडक थी वह।
सरित् पावस की उमड थी।
ध्वंस ज्वाला की घुमड थी।

उर्वशी सुन वज्र सी बन,
पार्थ से बोली वचन तन।
शाप देती हूँ तुझे मै,
भोग जड! ले योग की धुन।

वर्ष भर तुम क्लीब बन कर,
रूप का अपमान जानो।
त्याग निज पौरुष सकल,
क्लीब बन कर धूलि छानो।

भूमि पर प्रणिपात कर शिर,
पार्थ यों कहने लगे थे।
एक अभिनव मोद में बह,
सिन्धु से हँसने लगे थे।

अंब ! मेरी पद झुके झुके,
आज छू लेने प्रथम दो।
शाप को वरदान मानूं,
शक्ति दो, बल दो, नियम दो।

नारियों में अंब देखूँ,
प्रणव की आराधना हो।
सूर्य सी शुभ अग्नि भास्वर,
मम अखण्डित साधना हो।

वासना की धूम [illegible]
उर्वशी चल दी वहीं से।
सूर्य दीप्त [illegible] [illegible]
सोच यह चल दी [illegible] से।